अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शान्ति का एक सफल प्रबन्ध

सन्तोष कुमार उपाध्याय
शोध छात्र
राजनीतिशास्त्र विभाग
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, म0प्र0
मो0 : 9198108542
Email : santosh83.upadhyay@gmail.com

विश्व इतिहास में कोई भी युग स्थायी शान्ति अथवा स्थायी युद्ध का नही रहा है। युद्ध और शान्ति एक दूसरे के बाद आते रहते है। कभी युद्ध की भयानकता और कष्टो के समाधन के लिए शान्ति की इच्छा की जाती है और कभी अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के समाधान के लिए युद्ध का आश्रय लिया जाता है। फिर भी प्राचीन काल से ही व्यक्ति की चिन्ता रही है कि स्थायी शान्ति और सुरक्षा की प्राप्ति सम्भव हो। यदि देखा जाय तो प्रथम विश्व युद्ध के बाद भी यूरोपीय राजनीति में सबसे विकट समस्या सुरक्षा एवं शान्ति की थी। पेरिस शान्ति सम्मेलन में राष्ट्र संघ की स्थापना करके राजनीतिज्ञ इस समस्या का समाधान खोजने का प्रयास कर सके लेकिन अमेरीका द्वारा राष्ट्र संघ से अलग हो जाने की बाध्यता और अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की राष्ट्र संघ के प्रति कमजोर और दिखावटी निष्ठा ने इस संगठन द्वारा शान्ति और सुरक्षा की स्थायी स्थापना पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया फिर राष्ट्र संघ सुरक्षा की खोज का एक माध्यम तो था ही। पेरिस शान्ति सम्मेलन में शान्ति सान्धियों पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र फ्रांस की राजधानी से एक गहरी निराशा की भावना लेकर लौटे थे। प्रतिनिधियों के मातिष्क में यह बात बैठी थी कि पेरिस शान्ति सम्मेलन में यूरोपीय सुरक्षा व शान्ति का कोई स्थायी समाधान नही है, क्योकि युद्ध शान्ति को जन्म देता है, शान्ति युद्ध को जन्मदेती है।

प्रथम विश्व युद्ध को विश्व में स्थायी शान्ति के लिए जिन साधनों को आम रूप से स्वीकार किया गया है, उनमे एक है निरस्त्रीकरण जो लोग युद्ध परित्याग को शान्ति का मूल मानते है। उनकी धारणा है कि युद्ध इसलिए होते है कि युद्धरत राज्यों के पास अस्त्र का भण्डार होता है। अस्त्र भण्डार जितना ही बड़ा होगा उतने ही युद्ध की सम्भवना बनी रहती है। इसलिए अस्त्रों को समाप्त कर दिया जाय अथवा उनको बिलकुल सीमित कर दिया जाय तो युद्ध नही होगा। अस्त्रों की समाप्ति अथवा परिसीमन की इस प्रक्रिया को ही सामान्य निरस्त्रीकरण शान्ति कही जाती है। द्वितीय विश्वयुद्ध में अणुअस्त्रों के प्रयोग से युद्ध की भयानकता का एहसास कर लेने के बाद निरशस्त्रीकरण पर और भी ज्यादा जोर दिया जाने लगा। विध्वंसात्मक शास्त्रों के अविष्कारों ने मानव सभ्यता के विनाश के नवीनतम खतरो को जन्म दिया और सारी दुनिया यह महसूस करने लगी है कि यदि कारगर निरशास्त्रीकरण नही हुआ तो कभी भी मानव सभ्यता नष्ट हो सकती है। इसलिए स्थायी शान्ति का

प्रयास होना चाहिए। लार्ड ग्रे ने कहा था''यदि सभ्यता शसस्त्रों का उन्मूलन नही करती तो शसास्त्र ही सभ्यता का उन्मूलन कर देगें।

यह कहना कि शसास्त्र ही युद्ध को जन्म देते है, पूर्णतया सही नही है। युद्ध तो मानव मातिष्क की उपज होती है मानव स्वार्थी, स्वहित, यश, लोभ,लालच, सम्मान एवं गौरव को बढ़ाने व उसकी सुरक्षा करने के लिए प्रायः हुआ करते है। प्रो0 शूमाँ के शब्दों में , संघर्ष की आशा शस्त्र होड़ को जन्म देती है युद्ध और युद्ध की सम्भावनाओं से शस्त्र निकलते है। फिर भी लोग लम्बे समय से गाड़ी को घोड़े के आगे खड़ा रखने की खोज में है[1]।

ये सब कुछ होते हुए भी तनाव कम करने, धन के आय व्यय को रोकने आतंक और शंका के वातावरण से निजात पाने, विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान प्राप्त करने युद्धों की भयानकता को कम करने और कमोवेश युद्ध न होने देने के लिए निरशस्त्रीकरण की आवश्यकता और उसके महत्व को नकारा नही जा सकता ।यह बात अलग है कि निरशस्त्रीकरण को युद्ध जैसी बड़ी समस्या के समाधान का एक साधन माना जाता है। जबकि निरशस्त्रीकरण स्वंय एक बड़ी समस्या का रूप ले चुका है।

पिछले लगभग 60 वर्षों से तकनीकी क्रान्ति, वैज्ञानिक आविष्कारों , संचार परिवहन में तीव्रता और द्वितीय विश्वयुद्ध की व्यापकता के कारण विश्व के सिकुड़ जाने से राज्यों के आपसी सम्बन्धों का प्रभाव जनजीवन पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ने लगा है। जिससे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति का सम्बन्ध या पड़ोस के सम्बन्ध से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन–अध्यापन भी व्यापक और महत्वपूर्ण होता जा रहा है।[2]

आधुनिक अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शान्ति की भावना उतनी ही पुरानी है, जितना दुनिया का राजनीतिक इतिहास ईसा पूर्व इतिहास कालिन वर्शो में भी विश्व के विभिन्न देशों के बीच सम्बन्धों का नियमन होता रहा लेकिन उन्हें स्वरूप की दृष्टि से आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध जैसा कहना ठीक नही है। क्योकि एक तो राष्ट्र की अवधारणा विकसित नही हो पायी थी। देशों के बीच सम्बन्ध वस्तुत : दो राजाओं के बीच सम्बन्ध थे, संस्था गौण थी, व्यक्ति प्रधान। दूसरे अधिक से अधिक मित्रों की तलाश कर लेना ही अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध का आधार माना जाता था। तीसरा राज्यों की सीमायें स्थायी नही थी। चौथा दो देशों के सम्बन्ध स्थायी नही थे। पाचवाँ दुनिया बहुत छोटी थी या यह कह ले कि कई छोटी–2 दुनिया थी।[4]

राष्ट्र अन्योन्याश्रित है इसका अर्थ कि राष्ट्र परस्पर इतने निर्भर है कि एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से अलगाँव का जीवन व्यतीत नही कर सकता 3000 वर्ष पहले यूनानी दार्शनीक अरस्तु ने 'स्वयं र्प्याप्त' राज्य की कल्पना की थी। परन्तु अरस्तु के युग में आवागमन और संचार के साधन इतने आविकसित थे और अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क इतने सीमित थे कि राज्य एक सीमा तक आत्मनिर्भर और स्वयंपर्याप्त हो सकते थे। धीरे–धीरे आवागमन और संचार के साधन विकसित होते गये। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और सम्पर्क बढ़ते गये विशेष रूप से औद्योगिक क्रान्ति के बाद अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और सम्पर्को की मात्रा और विविधता निरन्तर तेजी से बढ़ती गयी जिसके कारण सभी

राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था इतनी जटिल और परस्पर निर्भर हो गयी कि कोई राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर और स्वयं पर्याप्त नही रह गया है।व्यापार और वाणिज्य के स्वर्ण सूत्रों ने सम्पूर्ण विश्व को बाजार स्थल की तरह एकता प्रदान कर दी है। आर्थिक रूप से राष्ट्रीय सीमाओं का अन्त हो गया है। एक राष्ट्र का निर्णय सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकते है, तथा विश्व व्यापार के उतार चढ़ाव किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर निर्णायक प्रभाव डाल सकते है। उदाहरण के लिए 1970 के दशक से तेल उत्पादक राष्ट्रों के द्वारा तेल की कीमतो में नैक द्वारा बार–बार वृद्धि किये जाने से विश्व के लगभग सभी देशों की अर्थव्यवस्था पर गम्भीर प्रभाव पड़े है। विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को गम्भीर संकट का सामना करना पड़ा है।[5]

अन्तर्राष्ट्रीय संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा राज्य परस्पर सम्बन्ध स्थापित करते है और उन्हें विकसित करते है जबकि अन्तराष्ट्रीय संस्थाए इन सम्बन्धों के संचालन को व्यवस्थित रूप और निरन्तरता प्रदान करने के लिए रची जाती है। ये प्रभुसत्ता के सिद्वान्त पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की परम्परागत व्यवस्था में निहित आतिवादी विकेन्द्रीकरण के प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है ये राष्ट्रों की अन्योन्याश्रितता की बढ़ती हुई जटिलता से उद्भूत् होती है वर्नर लेवी के अनुसार ''राष्ट्रो में उत्तरोत्तर बढ़ने वाली अन्योन्याश्रितता की वह शाक्ति है जो उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने के लिए प्रेरित करती है [6] अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के स्थापना के लिए एक और तत्व आवश्यक है, और वह विश्व समाज का विकास अन्तर्राष्ट्रीय संगठन तभी अपने बहुपक्षीय उद्देश्य को पूरा करने में समर्थ हो सकता है, जब वह किसी प्रकार के विश्व राज्य में विकसित हो जाये। मारगेन्थाऊ के अनुसार '' इस निष्कर्ष से नही बचा जा सकता कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एक विश्व राज्य के बिना स्थायी नही हो सकती क्योंकि कोई राज्य तब तक स्थापित नही हो सकता जब तक कि उसका भार उठाने में समर्थ और इच्छुक समाज न हो , अतः उसका भार उठाने में समर्थ और इच्छुक विश्व समाज के बिना विश्व राज्य स्थापित नही हो सकता[7]

अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के विकास को बहुधा अन्तर्राष्ट्रीयवाद, ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के आदर्श की विजय के रूप में देखा जाता है।, परन्तु व्यवहार में आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन किसी विशिष्ट आदर्शवाद का प्रतिफल कम और ऐतिहासिक आवश्यकता का शिशु आधिक था।

चार्ल्स पी0 श्लीचर के अनुसार–

' अन्तर्राष्ट्रीय संगठन इसलिए पाये जाते है क्योकि हम एक अन्योन्याश्रित जगह में रहते है, जिसमें मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति तब तक नही हो सकती है जब तक कि उसके जीवन के कुछ निश्चित पहलुओं को अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर संगठिन न किया जाए। मनुष्य की मुख्य आवश्यकताएँ सुरक्षा व समृद्धि है उन्हे प्राप्त करने के लिए वह शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग चाहता है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के प्रगति क्रम के पीछे दो मुख्य लक्ष्य रहे है, युद्ध और प्रतिबन्ध व मनुष्य की सामाजिक व आर्थिक दशा में सुधार। धनवान राष्ट्र बिल्कुल

स्वाभाविक रूप से शान्ति और सुरक्षा पर जोर देते हैं जबकि निर्धन राष्ट्र अपने नागारिको के आर्थिक और सामाजिक सुख की आभिवृद्वि पर बल देते है।[8]

भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने जापान के उद्योगपतियों को यदि भारत में उद्योग लगाने की बात करते है तो इसका सीधा सा मतलब यह होता है कि दुनिया में सुख, शान्ति और समृद्वि विस्तारवादी विचारधारा से नही हो सकता बल्कि विकासवादी नीति से हो सकता है। अर्थात विश्व सरकार के द्वारा विश्व शान्ति की स्थापना की जा सकती है।

सभी मानव संस्थाएँ आवश्यकता के कारण ही अस्तित्व में आ सकी है। इसका अपवाद अन्तर्राष्ट्रीय तमाम संगठन भी नही है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का उदय शान्ति की खोज का परिणाम है शान्ति की इच्छा उतनी ही प्राचीन है जितनी की मानव सभ्यता है। सभ्यता के प्रारम्भिक युग में भारतीय ऋशियों ने शन्ति की कामना करते हुए प्रार्थना की थी।–

''औद्योः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्ति रापः शान्ति : रोषधयः
शान्ति : वनस्पतयः शान्ति विश्वेदेवाः शान्ति ब्रह्मा शान्तिः सर्व
शान्तिः शान्ति रेव शान्ति : सा मा शान्तिरेधी।''

अर्थात् आकाश में शान्ति हो, अन्तरिक्ष में शान्ति हो, पृथ्वी पर शान्ति हो, जल में शान्ति हो, औषधियों में शान्ति हो, वनस्पति में शान्ति हो, प्रकृति की समस्त शाक्तियाँ हमें शान्ति दे। भगवान हमें शान्ति प्रदान करें। सर्वत्र शान्ति और केवल शान्ति का राज्य हो। वह शान्ति हमें प्राप्त हो।''[11]

परन्तु जब तक युद्ध राजाओं और सेनाओं की ही चिन्ता का विषय रहें, जब तक सामूहिक विनाश के शस्त्रों का आविष्कार नही हुआ, तब तक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और व्यवस्था की स्थापना के लिए संस्थाओं की आवश्यकता और मांग बहुत प्रवल नही हुई। परन्तु जैसे–जैसे युद्धों की भयंकरता और विनाश– लीला बढ़ती गई वैसे–वैसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बनाये रखने के लिए किसी उपयुक्त अभिकरण की आवश्यकता और मांग बढ़ती गई। बींसवी शताब्दी में प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध ने मानव इतिहास के पिछले सभी युद्धों को जन–धन के विनाश में मीलों पीछें छोड दिया। उसकी विनाश लीला ने शान्ति स्थापना के अभिकारणों की खोज को इतनी तीव्रता प्रदान की कि राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसे संस्थाओं का उदय हुआ जिन्होंने पिछले तीन सौ वर्षों से चली आ रही राज्य व्यवस्था के स्वरूप को एक नई पहचान प्रदान की । यद्यापि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन विश्व शान्ति की समस्या का एकमात्र साधन नही है परन्तु कोई इससे श्रेष्ठतर विकल्प भी नही है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थायी रूप से प्राप्ति के लिए विश्व एकता की रचना आवश्यक है और उसके लिए आवश्यक है एक संस्थापित विश्व व्यवस्था की स्थापना की जाये। विश्व एकता की प्राप्ति दो अन्य प्रकार से भी की जा सकती है। एक तो साम्राज्य रचना द्वारा दूसरी आखिल विश्ववाद के द्वारा। परन्तु राष्ट्र राज्यों के विश्व में विश्व साम्राज्य या अखिल विश्ववाद

के द्वारा विश्व एकता की प्राप्ति अन्तर्राष्ट्रीय संगटन के द्वारा उसकी प्राप्ति से भी कही अधिक दुष्कर होगी।[9]

विश्वशान्ति की प्राप्ति के लिए विश्वसंघ राज्य की स्थापना आवश्यक है, इस सम्बन्ध में कोई विवाद नही है परन्तु क्या विश्वसंघ राज्य की स्थापना सम्भव है? यह एक विवाद का विषय है। वी0एम0 शर्मा का मत है कि एक संघ राज्य की स्थापना के लिए छः पूर्व दशाएँ आवश्यक होती है।

(1) संघ में सम्मिलित होने वाले प्रदेशो में भौगौलिक समीपता होनी चाहिए।

(2) सभी सदस्य राज्यों में लोकतांन्त्रिक प्रणाली होनी चाहिए।

(3) सभी सदस्य राज्यों में समानता का सिद्वान्त होना चाहिए।

(4) सर्वमान्य आदर्श होना चाहिए जो संघ की विधायक ईकाइयां के लिए मान्य हो।

(5) संघ की ईकाईयों में निष्पक्ष न्याय का सिद्वान्त हो।

(6) संघ में सम्मिलित होने वाली ईकाइयों में संघ की रचना करने की तीव्र इच्छा हो।

वी0 एम0 शर्मा का मत है कि ये आवश्यक पूर्व दशाएँ विश्व संघ राज्य के सम्बन्ध में उपलब्ध नही है। अतः उसकी स्थापना सम्भव नही है पहला– विश्व के विभिन्न भागों में भौगौलिक समीपता नही है। दूसरा न केवल बहुत से देशों में लोकतान्त्रिक शासन पद्वति को अपनाया गया है वरन उपनिशवेशवाद और साम्राज्यवाद जो लोकतन्त्र की की विरोधी संस्थाएँ है अभी भी प्रबल हैं। तीसरे विश्व के राज्यों में समानता का सिद्वान्त स्वीकृत नही हुआ है। जैसे सुरक्षा परिषद् में कुछ सदस्यों को बड़ा मानकर निषेधाधिकार प्रदान करना आदि। चौथे विश्व संघ राज्य की स्थापना जिस आदर्श की प्राप्ति के लिए की जानी है वह आदर्श है, विश्वशान्ति और सुरक्षा की प्राप्ति। यह निःसन्देह एक उत्तम आदर्श है परन्तु इस आदर्श को व्यवहारिक बताने के लिए समझौते और पास्पारिक त्याग की भावना की होना आवश्यक है। इस भावना का विश्व के राष्ट्रों में नितान्त आभाव है पाँचवे विश्व के गैर लोकतान्त्रिक राज्यों में ही नही वरन् लोकतान्त्रिक राज्यों में भी निष्पक्ष न्याय की भावना का इतना आभाव है कि एक विश्व संघ राज्य में यदि प्रत्येक घन्टे में नही तो प्रत्येक दिन भी भीषण संघर्ष जरूर होंगे। छठे विश्व के राष्ट्रों में अपनी प्रभुसत्ता का परित्याग करके विश्व संघ राज्य को आवश्यक शाक्ति प्रदान करने की ऐच्छिक भावना का आभाव है।[12]

अतः अन्तिम परिणाम अवश्य ही एक विश्व राज्य की स्थापना होगा किसी न किसी प्रकार से विश्व यूनियन की स्थापना आवश्यम्भावी है। इसके लिए वैश्विक स्तर पर व्यवस्थापिका की थी एवं व्यवस्थापिका में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का संक्षिप्त इतिहास – गैथोर्न हार्डी

(2) संयुक्त राष्ट्र संघ – वेद प्रकाश सिंह

(3) दो विश्व युद्ध के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध – ई0 एच0कार

(4) द डिप्लोमैशी ऑफ डिस्आर्मामेण्ट इण्टरनेशनल कान्सिलियेशन – जोजेफ नेगी

(5) अरस्तु – पालिटिक्स वुक,VII चैप्टर 4

(6) वर्नर लेवी, फन्डामेन्टल्स आफ वर्ल्ड आर्गेनाइजेशन पृ0 8

(7) मारगेन्थाऊ – पालिटिक्स अमंग नेशन्स संस्करण – 1966 पृ0 513

(8) चार्ल्स पी0 श्लीचा – इन्टरनेशनल पालिटिक्स, पृ0 145

(9) An Introduction to the study of International Organization- Pitman B. Potter

(10) पत्रिकाएँ एवं समाचार पत्र

(11) Study of International Relation,P 206 - Quencey Wriqht

(12) वी0एम0शर्मा संघवाद और संघात्मक शासन

सन्तोष कुमार उपाध्याय

शोध छात्र

राजनीतिशास्त्र विभाग

जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, म0प्र0

मो0 : 9198108542

Email : santosh83.upadhyay@gmail.com